मोहे रंग दो लाल

जयश्री रॉय

मोहे रंग दो लाल

रात के मयूरकंठी आकाश में एक उज्ज्वल नक्षत्र अनायास दमक कर बुझा था। साथ ही मद्दिम बजती बाँसुरी की तान थमक गई थी। राज प्रासाद की ऊँची-काली दीवारों

https://www.hindiadda.com/mohe-rang-do-laal/

के बीच कुहासे-सा जमा मौन देर तक थरथराता रह गया था। मीरा ने हल्की चाँदनी में अपनी नीली हथेलियाँ देखी थी, उँगलियों के गाढ़े स्याह पोर - अंग-अंग नीला, वह श्याम हो गई है, कृष्णमय हो गई है! अहा! विष के उन्माद में मीरा की शिराओं में समुद्र का ज्वार उतरा है, रक्त के कण अग्नि-स्फुलिंग बन जल उठे हैं। "राणा ने यह कैसा अमृत भेजा..." प्याली से विष की अंतिम बूँद चाट कर मीरा बसंत की आधी रात में सुध-बुध खो कर नाचती है। उसके घाघरे की सतरंगी घेर से बवंडर उठते हैं, चूनर आकाश ढाँप देती है, पाजेब की झमक सुदूर नक्षत्रों में टंकार-सी गूँजती फिरती है। साथ में नाचते हैं राजद्रोह पर उतरे मेवाड़ के निर्मम महल, उसके विशाल कंगूड़े और फीकी चाँदनी में डूबी उसकी लंबी, उदास बारादरियाँ। मलयानिल के झोंकों पर बाँसुरी फिर से निःशब्द बजती रहती है, रेत की शुष्क ढूहों पर तुलसी का ताजा, श्यामल वन उग आता है, मोर का केंका गूँजता है अनवरत... मीरा नाचते-नाचते एक समय अचेत हो कर गिर पड़ती है, रुक्मिणी के सरहाने बैठा कृष्ण स्वर्ग के झरोखे से झुक कर देखता है अपनी पागल मीरा को और मुस्कराता है, साथ में सारा आकाश, आकाशगंगा भी। पूरब का क्षितिज बासंती मुस्कराहट से भर जाता है। पंछी कलरव कर उठते हैं...

मीरा की स्वप्न भरी आँखें चिन्मयी के बूढ़े, उदास चेहरे पर जाने कितनी सदियों बाद खुलती हैं! वह चुपचाप देखती है - आश्रम की छोटी-सी खिड़की पर गिरती शाम, आकाश का एक मैला टुकड़ा, दूर उड़ते बादल... पास के गोविंदजी के मंदिर में आरती शुरू हो गई है। पूरा वृंदावन हजारों घण्टियों की मधुर ध्वनि से गूँज रहा है। तीन दिन हुए चिन्मयी भजन-कीर्तन, आरती के लिए जा नहीं पायी है। बहुत बीमार है। अब कभी जा भी पाएगी...! चिन्मयी की मोतियाबिंद से लगभग अंधी आँखें अनायास भर आती हैं - अब क्या तुम्हारे दर्शन भी न मिलेंगे प्रभु! आँखों में इतनी रोशनी, देह में इतनी शक्ति बचाए रखना कि तुम्हें देख सकूँ, तुम्हारा नाम ले सकूँ... चिन्मयी के दुर्बल हाथ प्रार्थना में जुड़े थरथराते रहते हैं। सीने के भीतर हृदय थम-थम कर धड़कता है।

देर शाम उमा ब्राह्मणी लौटती है। उसके लिए थोड़ी खिचड़ी लाई है। ठाकुरजी का प्रसाद भी। उसे बैठा कर खिलाते हुए बताती है, श्री माँ एनजीओ की सरिता बहनजी बोली है, कल उसके लिए डॉक्टर भिजवाएगी। जरूरी हुआ तो अस्पताल में भर्ती करवाने का प्रबंध भी करवाएगी। चिन्मयी अपना पोपला मुँह चुभलाते हुए चुपचाप सुनती है - उसका एकमात्र रोग उसका जीवन है, इसका इलाज मृत्यु के सिवा और कुछ नहीं हो सकता... कौन वैद क्या करेगा... उमा की दी हुई बुखार की गोली वह मुश्किल से घटकती है। आजकल छाती में फाँस-सा पड़ा है। कुछ नीचे नहीं उतरता।

साँस भी अटकी रहती है। उसे बाथरूम जाना है। उमा उसका हाथ पकड़ कर आश्रम की अंतहीन सीढ़ियाँ उतरती है। उसके गठिया से अकडे घुटने हर कदम पर टूटते हैं, दर्द पोर-पोर चिलकता है। कभी वह हाँफती हुई बैठ जाती है, कभी चौपायों की तरह रेंगती है। तेज दुर्गंध से भभकते हुए बाथरूम तक पहुँचते हुए उसे लगता है, सदियाँ गुजर गईं। उमा ब्राह्मणी धैर्य के साथ उसके लिए खड़ी रहती है।

कितनी अजीब बात है, इसी उमा ब्राह्मणी से एक समय वह बात नहीं करती थी। उमा ब्राह्मणी साल भर हुए इस आश्रम में आई है। पश्चिम बंगाल के मेदिनीपुर जिले के किसी गाँव से है। पहले मंगला भजन आश्रम में रहती थी। **23** साल की उमर में विधवा हो कर ससुराल वालों के द्वारा वृंदावन भेजी गई थी। सबको पता है, वेश्यावृत्ति करती थी। आश्रम वाले ही करवाते थे। दो साल पहले गुप्त रोग से पीड़ित हुई तो उस आश्रम से निकाल दी गई। एक समाज सेवी संस्था ने उसका इलाज कारवाया और इस आश्रम में भेजा। स्वभाव से बहुत झगड़ालू! जुबान चाबुक-सी चलती है। बात-बात पर श्राप देती है। घंटे-घड़ियाल बजा कर रख देती है। उसे अपने ब्राह्मण होने पर बहुत गर्व है। भीख तो किसी से भी ले लेती है, मगर लोगों की जात पूछ कर ही उनके हाथ से पानी पीती है। अहंकार से सुनाती है - चाहे किसी भी जात-कुजात के साथ सोई मगर उन्हें कभी अपनी रसोई में घुसने नहीं दिया! चिन्मयी को उसके लिए दुख होता है। ऐसा कहते हुए वह कितनी दयनीय लगती है उसे खुद नहीं पता। जीवन की फटी हुई झोली में अपनी झूठी श्रेष्ठता का भरम ढोती फिर रही है। कान्हा कहता है, कर्म सब कुछ। मगर मिला सब भाग्य से है - ये जात, शरीर, दुर्भाग्य का जन्म भर का बोझा... हाड़तोड़ कर्म का कोई फल अब तक तो नहीं मिला!

एक बार जब वह बहुत बीमार पड़ी थी, चिन्मयी ने उसकी सेवा की थी। उसके कर्कश स्वभाव के कारण आश्रम का कोई उसे छूने के लिए भी तैयार नहीं था। तब से वह चिन्मयी को खूब मानती है। अब तो स्थिति ये है कि इस परदेश में हर सुख-दुख में चिन्मयी को उसी का एक अकेला आसरा है। घर-गाँव, देश अर्सा हुए पीछे छूटे, रिश्तों की लंबी सूची भी जाने कब शून्य में तब्दील हो गई। अपनों के नाम पर स्मृति में कुछ चेहरों के मिटते-लिसरते धब्बे हैं जो अक्सर आपस में गडमड हो जाते हैं। वृंदावन की गलियों में आवारा पशुओं के साथ हजारों विधवाओं की टोलियाँ भीख माँगती मारी-मारी फिरती हैं। लोग उठते-बैठते इन्हें दुत्कारते हैं, अपशब्द कहते हैं। शुरू-शुरू में चिन्मयी कुछ समझ नहीं पाती थी। उसे बंगला के सिवा कोई और भाषा नहीं आती थी तब। अब इतने सालों में बहुत सारी गालियों के साथ कुछ टूटी-फूटी हिंदी समझने लगी है। कोई कुछ भी कहे, वह विनय से दुहरी हो कर पोपले मुँह से मुस्कराते हुए -

'राधे-कृष्ण, राधे-कृष्ण' कह देती है। इस परदेश में 'राधे-कृष्ण' नाम ही उसकी एक मात्र सुरक्षा है। भीतर आठों प्रहर प्राण भय से धुकधुकाता रहता है। जिसकी मर्जी गाली बके, पीट दे... आश्रम का चौकीदार, रसोइया, मंदिर के पंडे... उम्र कम थी तो डर अलग किस्म का था। जाने कब कौन किस अँधेरे कोने में खींच ले! सुदूर बंगाल से आई हुई हर तरह से असहाय, निराश्रित औरतें यहाँ किसी के लिए भी सहज शिकार होती हैं। कल भी और आज भी... सब कहते हैं समय बदला है। स्थिति बेहतर हुई है, मगर कहाँ! उमा ब्राह्मणी पान चबाते हुए अक्सर कहती है - कोथाय जाच्छो गोपाल, ना सोंगे जाच्छे कपाल... (गोपाल कहीं भी जाओ, साथ तो किस्मत भी जाएगी ही)

सुना है सरकार विधवा पेंशन की योजना ले आई है। बृद्धावस्था पेंशन भी मिलता है। साथ ही अंत्योदय अन्न योजना में चावल, गेहूँ। स्वधार योजना के तहत थोड़ी आर्थिक मदद। मगर कहाँ! आश्रम की अमृता बहनजी कई कागजों पर अँगूठा लगवा कर ले गई थी। कभी-कभी हाथ में भीख की तरह कुछ रख देती है, तेल-साबुन खरीदने के लिए। बस इतना ही। किसी की उनसे कुछ पूछने की हिम्मत नहीं होती। आश्रम का पुरबिया चौकीदार राम सिंहासन उसका खास आदमी है। थाल भर कर गरम लिट्टी-चोखा अक्सर मैडम के कमरे में पहुँचाता है। अपनी तेल पिलाई हुई छह फुट की लाठी बगल में रख कर आश्रम के गेट पर बैठा खैनी मलता रहता है। हर विधवा को बुढ़िया कह कर दुरदुराता है, कई को पीट चुका है।

उमा ब्राह्मणी अक्सर उससे पिटती है, मगर डरती नहीं। निर्लज्जता से अपने पान से कत्थई पड़े दाँत झमका कर हँसती है - आ मोलो जा! ओ मेगुया आमार की कोरबे ला! आमार गाए हाथ दिएछे, उमा ब्राह्मणीर गाए! जोदी ओर गाए पोका ना पोरे तो आमार नामो उमा ब्राह्मणी नोय बोले दिलाम (अरे जा, वह मेरा क्या बिगाड़ लेगा! मुझ पर हाथ उठाता है! अगर उसके कीड़े ना पड़े तो मेरा नाम उमा ब्राह्मणी नहीं कहे देती हूँ!) सुन कर राम सिंहासन का गाँजा का नशा उतर जाता है। बाभन देवता के श्राप का भय उसे देर तक सताता रहता है। इसके बाद जब तक दुबारा गाँजे का नशा जोर से नहीं चढ़ता, वह उमा ब्राह्मणी के आसपास नहीं फटकता। उमा ब्राह्मणी जानती है, बिगड़ने को अब उसके पास कुछ नहीं धरा है। ना देह, ना भाग्य... डरे किस बात से! कहती है - जार दु कान काटा से मोदधे रास्ता दिए चोले(जिसके दोनों कान कट गए हो, वह सड़क के बीच से चलता है)।

उमा ब्राह्मणी हमेशा से ऐसी मुँहजोर नहीं थी। खूब डरती थी, शरमाती थी। पति की मृत्यु के बाद कई सालों तक ससुराल में प्रताड़ित करने के बाद तेईस साल की उम्र में जब उसका देवर उसे वृंदावन छोड़ गया था, एक पोटली में एक किलो दाल-चावल और

दो धोतियों का संबल लिए वह दिनों तक केसी घाट की सीढ़ियों पर बैठी घाट की पृष्ठभूमि में खड़े भव्य मदनमोहन मंदिर की ओर देख रोती रही थी। देश से तो क्या, अपने गाँव से भी उसने पहली बार बाहर कदम रखा था। और इतनी दूर आ गई थी। किसी ने कहा था, वृंदावन में सबको आश्रय मिलता है, यह माधव का धाम है। मगर यहाँ तो कोई दरवाजा उसे खुला नहीं दिख रहा। घृणा से भरी जलती आँखें, दुत्कार और कटु बोली-भाषा... विधवाओं की टोली में एक और विधवा का इजाफा, एक और भिखमंगी! कहाँ हो भगवान! वह मंदिर-मंदिर घूमती फिरती, यहाँ-वहाँ भीख माँगती। शुरू-शुरू में भीख माँगना बहुत कठिन प्रतीत हुआ था। लोगों के सामने हाथ फैलाते हुए लगा था, जमीन में धँस जाएगी। भीख में मिला पहला निबाला गले से नीचे नहीं उतर पाया था। किसी ने पहले-पहल झिड़का तो अपमान से दोनों कान गरम हो गए।

एक दिन यमुना की संध्या आरती के बाद एक विधवा उसकी कहानी सुन उसे अपने साथ एक भजन आश्रम में ले गई थी। वहाँ पहली रात उसे आश्रम के मैनेजर के कमरे में गुजारनी पड़ी थी। पहले-पहल मना करने पर उस विधवा ने ही उसे मैनेजर के साथ मिल कर पीटा था। कहा था, यहाँ रहना है तो ना कहना भूल जाओ। सेवा दासियों का एक ही काम है, सब की तन-मन से सेवा और ईश स्मरण!

सेवा दासी हो कर वह सबकी मुफ्त की नौकरानी हो गई। जिधर धकेली गई, गई, जो कहा गया, किया। सुबह-शाम घंटों चिल्ला-चिल्ला कर सबके साथ कीर्तन गाती, बदले में दो रुपये, दो मुट्ठी चावल मिलते! कभी-कभी आश्रम के रसोइये की कृपा दृष्टि पड़ जाती तो कुछ अतिरिक्त भोजन भी मिल जाता। बदले में जूठे बर्तनों का अंबार साफ करना पड़ता। सबके हर छोटे-बड़े काम करने पड़ते। इन सबके बाद आश्रम की एक सीलन भरी अँधेरी कोठरी की ठंडी फर्श पर बोरी का एक टुकड़ा बिछा कर वह अनगिनत विधवाओं के साथ पड़ी रहती। इस विशाल ब्रह्मांड में एक टुकड़ा छत, चार दीवारों की आड़ मिल जाना ही उसके लिए ऐश्वर्य था तब। उन दिनों उसे समझ नहीं आता था, हर मौसम में दिन और रात यहाँ इतने लंबे कैसे होते हैं! काटे नहीं कटते! सिल-से बँधे रहते हैं सीने पर...

उदास, निसंग रातों को उसे अपने ठाकुरजी याद नहीं आते थे। उन्हें स्मरण कर-करके वह थक गई थी, ऊब गई थी!। अगर कुछ याद आता था तो अपना गाँव, छोटा-सा घर, मलेरिया के चार दिन के बुखार में मर गया पति... विस्मृति के अंधकार में खो गए उसके चेहरे को कल्पना में टुकड़ा-टुकड़ा जोड़ते हुए वह घंटों बीटा देती। कभी प्यार नहीं किया था उसके पति ने उससे, अपनापन भी नहीं दिया था। गाँव के अधिकतर मर्दों की तरह उसे मारता-पीटता भी था। मगर वह था तो एक आश्रय था, सर पर छत

थी। उसके लिए पति के होने का यही अर्थ था - सुरक्षा! बहुत पहले वह जीवन का एक छोटा-सा सच समझ गई थी - बीच बाजार सैकड़ों मर्दों के बीच नुचने-बँटने से अच्छा है घर के अंदर एक मर्द की गुलामी में रहना। वह रह भी रही थी मगर जाने अचानक क्या हुआ। सब उलट-पुलट हो गया। चार दिन के बुखार में उसका पति चल बसा। इसके बाद उसके जीवन का हर सुख हमेशा के लिए खत्म हो गया...।

जिस दिन उसका पति मरा था, वह उसके सिरहाने बैठ कर उसके लिए उतना नहीं, जितना अपनी चूड़ियों के लिए रोई थी, सिंदूर-बिंदी के लिए रोई थी, जीवन से पुँछ गए हर रंग के लिए रोई थी। आभूषण के नाम पर कलाइयों में पड़े 'साखा-पोला-नोआ' का एक मात्र सुख भी गया! जिस आँगन को वर्षों से लीप-पोत कर उसने चंदन-सा चिकना बना रखा था, तुलसी चौरे पर अल्पना आँक रखा था, उसी घर-आँगन में वह एक दिन में पराई हो गई। एक बच्चा होता तो फिर भी कोई उम्मीद रहती। उस घर में बने रहने का अधिकार होता। मगर उसके पास तो यह सब कुछ भी नहीं था। सिर्फ रो कर, दुहाई दे कर क्या हासिल हो सकता था भला! अपने लंबे, घने बालों से उसे बहुत प्यार था। सर मुंडवाने से मना किया तो सास ने उन्हीं बालों से पकड़ कर उसे बीच आँगन घसीटा। विधवा माँ ने रोते हुए समझाया, जब जीवन का सबसे बड़ा धन चला गया तब इन नगण्य चीजों से मोह कैसा! सारे मोह के बंधन एक-एक कर काटना सीखो, वर्ना आगे का जीवन नहीं कटेगा...

उस दिन के बाद उसका जीवन एक पल नहीं कटा, हाँ बहुत सारे साल जरूर गुजर गए। गहरी रात के एकांत में आश्रम की सीढ़ियों पर चिन्मयी की प्रतीक्षा में खड़ी उमा ब्राह्मणी खो गए समय के सिरे टटोलती देर तक अनमन खड़ी रही थी। चाँद रात के उजले आकाश में रत जगे पंछियों के झुंड निःशब्द उड़ रहे थे। बगल के तालाब में उनकी परछाइयाँ रह-रह कर काँप उठतीं। एक समय बाद उमा चिन्मयी को आवाज देती है लेकिन चिन्मयी वहाँ कहाँ! ज्वर से उसका सारा शरीर जल रहा है मगर इसी से तो रुका नहीं जा सकता। रास का समय हो आया, चाँद का जगमगाता टीका आकाश के गोरे माथे के बीच जड़ा है। होली का मौसम है। हवा में गुलाल उड़ रहा है। अब उसके कृष्ण आएँगे...

सारा दिन तेज धूप में शिथिल पड़े निधिवन के पेड़-पौधे रूपसी गोपियाँ बन एक-एक कर आँखें मलते हुए जाग उठे हैं। सोए हुए राधा रानी मंदिर, श्री हरिदास की समाधि, राधा का पवित्र कुआँ-चाँद सब पर अपनी चाँदनी के शीतल छींटे मार उन्हें जगा चुका है। रंग महल के शृंगार कक्ष में अपनी शांत-सौम्य मूर्ति से निकल श्री कृष्ण राधा को अपने हाथों से सजा रहे हैं - बकूल फूल माला, गेरू से, चंदन-आलता-कुमकुम से...

उनकी सुंदर काया दूधिया चाँदनी में नील रत्न की तरह दमक रही है। मान से भरी हुई श्री राधा की आँखों में राग की लालिमा है। उधर एक कोने में अंधकार के साथ मिल कर खड़ी मीरा की आँखों में आँसू... वह बहुत खुश है, मगर रो रही है। शुक्ल पक्ष की इस बेला में उसकी सफेद साड़ी के मलिन आँचल में रात का असीम अंधकार भरा है...

आज की रात भी सैकड़ों गोपियों से घिरे रासलीला में मगन कृष्ण मीरा की तरफ एक बार देख नहीं पाते। योगमाया ने समस्त लोक को मोहाविष्ट कर रखा है। सारा ब्रज प्रदेश - गोवर्धन, गोकुल, बलदेव, नंदगाँव, बरसाना, महावन, कुसुम सरोवर - राधा-कृष्ण और उनकी गोपियों के साथ रास में डूबा है। निधिवन, सेवा कुंज के तुलसी वन हरीतिमा में नहाए झूम रहे हैं। बाँसुरी की मधूर तान से चारों दिशाएँ गूँज रही हैं।

आखिर सारी रात रास रचाने के बाद मनमोहन क्लांत हो कर अपनी राधा के साथ रंग महल में विश्राम करने चले जाते हैं। भोर की लालिमा फैलते-फैलते सारी गोपिकाएँ भी फिर से लता-गुल्म, पेड़-पौधों में परिवर्तित हो कर निधिवन के आसपास सो जाती हैं। दिन के उगते ही सब कुछ पहले की तरह सामान्य दिखता है। सफेद धोती में लिपटी मीरा अकेली अपनी जगह मूर्तिवत खड़ी रह जाती है, आज भी रंग का एक कण उसके भाग्य में ना जुटा! ज्वर फिर शिराओं में आग की नदी की तरह हरहरा कर चढ़ रहा है। कनपटियों पर घन-से बरस रहे हैं। वह उद्दाम हवा में पड़े बाँस के पत्ते-सी हल्के-हल्के काँप रही है - और कितने दिन छलोगे अपनी मीरा को गिरधर? अपने रंग में रंग लो... उमा ब्राह्मणी चिन्मयी के दोनों कंधे पकड़ कर झिकझोरती है - सुन रही हो मासी, उठो! तुम्हारा बुखार तो बढ़ता ही जा रहा है... चिन्मयी को कुछ समझ नहीं आता, वह चढ़ी हुई आँखों से अपने चारों ओर देखती है - माधव...

उमा उसे एक जमादार की मदद से आश्रम के कमरे में उठा लाई है। चारों तरफ बैठी-लेटी हुई विधवाएँ उसे उदासीन भाव से देख रही थीं। यहाँ सबकी आँखें एक-सी थीं - भावहीन, निर्लिप्त। यहाँ रोग-शोक कोई अनहोनी नहीं, वरन दिनचर्या का अभिन्न हिस्सा है। कोई न कोई हर समय किसी कोने में पड़ी कराह रही है। मृत्यु की प्रतीक्षा में जी रही है। यहाँ की हवा हर ऋतु में दुख, पीड़ा और रोग की बोसीदा गंध से बोझिल रहती है... किसी ने फुसफुसा कर कहा था - अब देह रखेगी लगता है! सुन कर किसी दूसरी ने खीज कर कहा था, अभागी! मरने का और समय नहीं मिला! ब्रजभूमि में अभी होली की धूम है...

"होली से हम राँड़ों का क्या लेना-देना, सुनूँ!" उमा ब्राह्मणी ने चमक कर कहा था। उसकी फटकार से सब चुप लगा गई थीं। कुछ देर की चुप्पी के बाद कोने में गठरी बनी

पड़ी एक विधवा अचानक सिसकने लगी थी - वैष्णवी दीदी... तत्क्षण दूसरे कोने से कोई झल्ला उठी थी - आबार शुरू होये गेली मागी! एर कान्नार ठेलाय तो कान झाला-फाला होये गेलो (फिर शुरू हो गई! इसका रोना सुन-सुन कर तो कान पाक गए!)! इस आश्रम की एक बाशिंदा थी ये अस्सी साल की वैष्णवी दीदी। दो दिन पहले नहाने के लिए केसी घाट जा कर लौटी नहीं थी। कल बाँके बिहारीजी के मंदिर की सीढ़ियों पर उसकी अकड़ी हुई लाश मिली थी। भिखारी बच्चे उसकी कटोरी से पैसे लूट रहे थे। उसकी थैली का सामान भी चारों तरफ बिखरा पड़ा था - भीख में मिले कुछ मुट्ठी चावल, बासी रोटियाँ, जप की माला...

म्युनिसपैल्टी का स्वीपर उसके शव को बोरी में ठूँस कर ले गया था और टुकड़े-टुकड़े कर नदी में फेंक आया था। वैष्णवी अक्सर कहती, जाने मेरी चिता को कौन आग देगा... पाँच-पाँच बेटों की माँ थी वह। बार-बार सुनाती थी सबको। लावारिस शवों की प्रायः यही गति होती है यहाँ। किसी तरह नष्ट कर दिया जाता है। जीवन में भी दुर्गति और मृत्यु में भी... देह के इस नरक का कोई अंत नहीं... सुबकते हुए उसकी सालों की मित्र पचत्तर साल की दुर्गा देवी उसकी पोटली टटोलती है - अपने पाँच बेटों के फोटो और 'कृष्ण अष्टशत नाम' के सिवा और कुछ नहीं इस अभागी के पास! दुर्गा देवी हताशा में एकबारगी रोना भूल जाती है - पचास साल से भीख माँग कर यही कमाया! धिक! उमा ब्राह्मणी ने कुछ रुपये जोड़ रखे हैं अपने अंतिम क्रिया कर्म के लिए। कई लोगों से कह के भी रखा है। देह की मिट्टी ठीक से पार ना लगी तो मर कर भी मुक्ति ना मिलेगी... जो नरक भुगतना था यहीं भुगत लिया, इसके आगे और नहीं बाबा! उमा ब्राह्मणी अपनी कंठी माला फेरती हुई बड़बड़ाती रहती है। मगर इन सब बातों से निर्लिप्त चिन्मयी अपने कृष्ण के ख्यालों में डूबी पड़ी रहती है। उसका बुखार किसी भी तरह उतर नहीं रहा!

ब्रजभूमि में होली की धूम मची है। कृष्ण साँवला है और बरसाने की छोरी राधा दूध-सी गोरी। कृष्ण की शिकायत पर यशोदा ने उसे सुझाया है गोरी राधा को रँग कर साँवली बना दे। सुन कर कृष्ण राधा को रँगने अपने दोस्तों के साथ नंदगाँव से बरसाना जाता है। बरसाने में राधा और उसकी सहेलियाँ कृष्ण और उसके मित्रों की खूब मरम्मत करती है। लट्ठ मार होली में रंगों की पिचकारियाँ छूट रही हैं, हवा गुलाल से लाल है, लोग झूम रहे हैं, नाच रहे हैं...

इन सब के बीच मीरा अपने सफेद लिबास में आज फिर निस्संग खड़ी है। उसकी देह पर रंग की एक छींट नहीं। सूनी आँखें, सूनी माँग... हर तरफ इतना रंग मगर उसका जीवन एकदम बेरंग। कितनी मरुभूमियाँ पार की उसने, कितने पहाड़, नदियाँ... सिर्फ

अपने गिरधर गोपाल से मिलने के लिए! मगर वह कहाँ मिला! वर्षों बीत गए इस ब्रज भूमि में। लगभग चौदह वर्ष का वनवास... प्राचीन मीराबाई मंदिर की दीवारों की एक-एक ईंट कृष्ण के विरह में बहे उसके आँसुओं से भीग गई। वह गाती फिरती है, रोती फिरती है। मोहन... बार-बार पुकारती है, मगर उसकी आवाज उसके भगवान तक नहीं पहुँचती। आकाश के नीले शून्य में घुमड़ कर दम तोड़ देती है। रात कोई असंख्य नक्षत्रों के पीछे से छिप कर उसे देखता है, अलस मलयानिल बन छूता है, श्यामल मेघ बन आपाद-मस्तक भिगो जाता है। समुद्र की उत्ताल लहरों में, मोरपंखी आकाश में, अनंत के निस्सीम नील में उसका संकेत है, सूक्ष्म आभास है मगर वह पकड़ में नहीं आता। छलिया जो है। उसे छलता रहता है। अब भी कितने व्यस्त हैं। आज बरसाने की होली। कल फिर राधा अपनी सखियों के साथ नंदगाँव आएगी। उसके बाद मथुरा की होली, बाँकेबिहारी के मंदिर की होली, गोकुल, द्वारकाधीश, वृंदावन की होली... राधा कृष्ण के रंग में रंग कर एकदम आकाशवर्णी हो गई है, कृष्ण सुनहरा! अपनी दमकती हुई कंचन मूर्ति राधिका-सा!

मीरा शायद वह जन्म से है। या जन्मों से। बाल विधवा है। वैधव्य का सफेद रंग ले कर पैदा हुई है। कुलीन घर की बेटी, रजस्वला होने से पहले कन्यादान ना हुआ तो माता-पिता नरक में जाएँगे। तो एक पीलिया से मरते हुए रोगी से विवाह करवा दिया। सब कहते हैं, लाल बनारसी में वह एक दिन ससुराल गई, कुछ दिन बाद सफेद धोती में वापस आ गई। बस इतनी ही है उसके सुख-सौभाग्य की कथा...

छोटी बच्ची आमिष खाने के लिए जिद करती थी तो माँ कच्चे केले में काठिया डाल कर उसे खाने देती थी। बहुत दिनों तक उसे पता ही नहीं चला कि जो वह मछली समझ कर खाती रही है वह दरअसल मछली नहीं, कच्चा केला है। वे दिन इच्छाओं के थे, लोभ के थे, अथाह निराशा के थे। वह हर चीज के लिए तरसती - अच्छे भोजन, रंगीन कपड़े, साज शृंगार... रसोई में सरसों-हिल्सा पकता, कतला का बड़ा सर भैया की थाली में परोसी जाती, बारिश में रोहू-पबदा-टिलापिया की ढेर लग जाती। पूरा घर पकते खाने की सुगंध से मह-मह कर उठता। वह बार-बार थूक निगलती पूजाघर के एक कोने में अपने लिए अरवा चावल और दाल उबालती। सधवा माँ से अपनी बाल विधवा बेटी की हालत देखी नहीं जाती। वह भी अपनी आमिष खाने की थाली परे ठेल कर रख देती।

उसकी बहनें अपनी सहेलियों के साथ चरक, रामनवमी के मेले जातीं, झूले पर बैठतीं, मिठाई, मलाई बरफ खातीं। लौटती फीते, चूड़ी, बिंदी और मेले की ढेर सारी कहानियों के साथ। वह एक कोने में बैठी-बैठी सुनती और रातों को सबसे छिप कर रोती। वह

अपने दुख किसी से कह नहीं पाती थी। माँ ने, दादी ने, काली बाड़ी के पुरोहित मोशाय ने उससे कहा था, सब पाप है - ये इच्छा-कामनाएँ, रसना का लोभ... शायद तभी से वह अपने कृष्ण से अपने मन के सारे दुख-दर्द साझा करने लगी थी। विधवा मीरा के एक मात्र सखा-सहाय थे कृष्ण मुरारी। जिसका कोई नहीं, उसके श्री कृष्ण। मीरा की जीवनी के बारे में पढ़-जान कर वह आशा और खुशी से भर उठी थी। उन जैसों का भी कोई अपना है, भगवान श्याम सुंदर हैं! उनसे वह लड़-झगड़ सकती है, बोल-बतिया सकती है, हर कामना की पूर्ति कर सकती है। पूरी दुनिया से निराश-निर्लिप्त हो कर जाने कब वह अपने कृष्ण की मीरा हो कर उनसे अटूट रूप से जुड़ गई थी।

उसे याद आता है भवेश फकीर। उसके गाँव में एक तारा पर बाउल गा कर भीख माँगता फिरता था। दोपहर नीम तले दो घड़ी सुस्ताने बैठता तो गाँव के बच्चे उसे घेर लेते थे। कोई पूछता तुम्हारा घर कहाँ है तो कोई पूछता तुम्हारा देश कहाँ। जवाब में भवेश सिर्फ मुस्कराता - कहाँ से आए हैं, कहाँ जाना है... यही तो सवाल है दीदी मोनी जिसका जवाब ढूँढ़ता फिरता हूँ। "तुम किसी को खोज रहे हो?" चिन्मयी कौतूहल से उसकी डुगडुगी उलट-पलट कर देखती तो भवेश फकीर डुगडुगी उसके हाथ से वापस छीन लेता - हाँ खोज रहा हूँ अपने 'मोनेर मानुष' को **(**मन का मीत**)**! फिर अनायास अपने दोनों कानों से हाथ छुआ कर लालोन फकीर का गीत गाने लगता - जानती हो ना लालोन फकीर को? बाउल संगीत के बहुत बड़े कवि-गायक -

सब पूछते हैं लालोन तुम्हारा मजहब क्या है इस संसार में**?**

लालोन जवाब देता है **-** मजहब कैसा दिखता है**?**

मुझे तो आज तक यह नहीं दिखा**!**

कोई अपने गले में माला पहनता है**,**

कोई ताबीज**,**

इससे लोग समझते है उनका मजहब अलग है।

मगर तुम जब संसार में आते हो या जाते हो

क्या तुम पर तुम्हारे धर्म का ठप्पा लगा रहता है**...?**

जाने भवेश फकीर की उदास आवाज में या उसके गीत के बोलों मे क्या होता था कि सुन कर चिन्मयी उस छोटी-सी उम्र में भी उदास हो जाती थी। कई बार उसने उसे गाते

हुए अविरल रोते हुए देखा था। पूछने पर वही एक जवाब - अभी तुम बहुत छोटी हो दीदी मोनी, इतना नहीं समझोगी। बस इतना जान लो, संस्कृत में एक शब्द होता है 'बातुला' - यानी हवा से पागल हुए लोग! तो हम वही पागल या दीवाने लोग हैं, हवा के झोंकों से बेचैन रूहें... इस भव संसार में अपने मोनेर मानुष को पर्वत, जंगल, मरुभूमियों में रात-दिन रोते-गाते हुए ढूँढ़ते फिरते हैं...

गाँव के बाहर सबसे अलग-थलग दो-चार बाउलों का परिवार होता था। ये अधिकतर वैष्णव लोग होते थे। कुछ सूफी भी जिन्हें 'जाते मारा' या 'जात बाहर' बुलाया जाता था। मर्द सफेद लुंगी-कुर्ता पहनते थे तो औरतें सफेद साड़ी। इनके बच्चे नहीं होते थे। बस मर्द एक या दो सेवा दासी रख लेते थे और अपने 'अखाड़े' बदलते रहते थे। इनका कोई स्थायी घर नहीं होता था। बाउल पश्चिम बंगाल और बांगला देश में हर जगह पाए जाते हैं मगर कोई इनके बारे में ज्यादा कुछ नहीं जानता। कोई कहता नाथ संप्रदाय के सहजिया दर्शन से इनका जन्म तो कोई कहता ईरान के सूफी बाल से आठवीं, नौवीं सदी के आसपास। उनके बारे में पूछते ही अधिकतर बाउल की तरह भवेश फकीर भी बात को हँस कर उड़ा देते - क्यों दीदी मोनी पागल हवा का पता पूछती रहती हो। हम तो बस बहते रहते है सरहदों, नदियों, मरुओं के पार एक देश से दूसरे देश अपने मोनेर मानुस, मुर्शिद, गुरु की तलाश में! हमारे पीछे हमारी छाया तक नहीं होती। काल की अबाध धारा हमारे पदचिह्न मिटाती चलती है...

फिर अपने एकतारा की तार छेड़ता - हम में सब - तंत्र, सूफी, इस्लाम, वैष्णव, बौद्ध... और हम सब में! चिन्मयी को उसकी बातें समझ नहीं आती थी मगर अच्छी लगती थीं। लोग कहते थे, इनके पास मत जाओ। ये बच्चे चुराते हैं और अपने बड़े-से झोले में डाल कर ले जाते हैं! चिन्मयी को यकीन नहीं होता था। इतनी उदास आँखों वाले, प्रेम के गीत गाने वाले कभी बुरे इनसान नहीं हो सकते। मीरा भी तो इनकी तरह ही रही होगी - एक तारा हाथ में ले कर अपने 'मोनेर मानुषेर' तलाश में जोगन बन कर रास्ते में निकल पड़ी थी... जिन्हें परम प्रिय की लगन लगी हो उसे इस क्षण भंगुर दुनिया का क्या मोह!

एक दिन जिस तरह भवेश फकीर ने उनके गाँव के पास डेरा डाला था उसी तरह अचानक से चला भी गया था। उसे उदास देख माँ ने समझाया था - इन निर्मोहियों का मोह कैसा। हवा का आवारा झोंका भी कभी मुट्ठी में बाँधे से बँधा है?

कितना खुद को समझाया, निर्लिप्त बनने की कोशिश की मगर यह मोह का नाग पाश कटता कहाँ है! कसे रहता है अपनी बलिष्ठ भुजाओं में... जीवित से मोह, निर्जीव

से मोह! हर गत-आगत से मोह... बचपन में पहनी दो लाल चूड़ियों की स्मृति से आज तक स्वयं को मुक्त नहीं कर पाई! बाकी से क्या होगी! शरद ऋतु में जैसे ही दुर्गा पूजा के ढाक बज उठते हैं, रूपसी बंगाल की कास फूली धरती चिन्मयी की निविड़ रातों के सपनों में निःशब्द उतर आती है - श्यामल ग्राम बांग्ला के कमल-कुमुदिनी के गुलाबी-दूधिया फूलों से भरे हुए तालाब, खेत-खलिहान, केले, आम, लीची के बाग...

बीच में हजारों किलोमीटर का व्यवधान है, सालों का अंतराल है, विस्मृति का घना कुहरा रह-रह कर गहरा उठता है, मगर कभी काली, लंबी रातों में दूर जल रहे दीये-सी यादें आज भी भीतर टीमटीमा उठती हैं, उसे देर तक अपने मद्धिम आलोक में आपाद-मस्तक घेरे रखती हैं - तुलसी चौरे पर गरद की कोरी साड़ी में दीये बालती माँ, आषाढ़-श्रावण में निरंतर झड़ता आकाश, पकते आम की गंध से मह-मह करती ग्रीष्म ऋतु की अलस दुपहरें... आज भी आँख बंद करके वह गाँव के पोखर में कलशी ले कर उतर पड़ती है, दोपहर की धूप में पानी की सतह पर रुपहली मछलियों को तलवार-सी कौंध कर अदृश्य होते देखती है। कभी बँसबाड़ी में तीतर बोलता है, कभी भर दुपहरी की चुप में कहीं लद्द से एक आम गिरता है! चिन्मयी आँख खोल कर इधर-उधर देखती है। आज कल वह हर समय आवाज, सुगंध, स्वाद से घिरी रहती है। विस्मृति की धुंध में बहुत पहले खो गई घटनाएँ, दृश्य, बातें एक-एक कर जीवित हो उसे आत्मीयता से घेर लेती हैं, आसपास छाया-नृत्य-सा चलता रहता है रह-रह कर। लगता है जीवन का अवसान बेला कहीं निकट ही आ खड़ा हुआ है! मन हर प्रहर स्मृतियों की मंजूषा खोल कर बैठ जाता है, उलट-पुलट कर देखता है हर देखे-जीए को बार-बार...

उमा ब्राह्मणी कई बार उसे छेड़ती है - क्यों दीदी! कोई कान्हा कभी तुम्हारे जीवन में नहीं आया...? सुन कर वह टाल जाती है - एक स्त्री के जीवन में प्रेम के नाम पर तो बहुत कुछ आता है उमा! मगर प्रेम शायद ही आता है... हाँ, मर्द अपने हर लोभ, भूख को प्रेम का नाम जरूर देता है। दरअसल प्रेम शब्द एक स्त्री के जीवन की सबसे बड़ी छलना और विडंबना है... दुख का कारण भी! कहते हुए चिन्मयी को राखाल का स्मरण हो आता है। घुँघराले बालों वाला पड़ोस का खूब साँवला लड़का! एकांत में उजली आँखों और गाढ़ी आवाज से कहता था, उससे बहुत प्रेम करता है! उसके लिए कुछ भी करेगा! उस जादू भरी आवाज ने, मधु मिश्रित शब्दों ने हर औरत की तरह चिन्मयी को भी मोह लिया, पूरी तरह ठग लिया! आज सोचती है तो लगता है, किसी को दोष दे कर भी क्या होगा, विश्वास तो औरत खुद ही हर कीमत पर करना चाहती है, ठगे जाने की भीषण कीमत पर भी! क्योंकि औरत अपने भीतर कहीं गहरे जानती

है, अविश्वास में जीने से बेहतर होता है विश्वास करके मारा जाना... प्रेम की मरीचिका के पीछे जीवन के पहले बसंत से जो मन का हिरण दौड़ना शुरू करता है वह आखिरी क्षण तक कहाँ रुकता है! बस कोई एक शब्द प्रेम कहे और लूट ले जाय सारा का सारा... इतना तो आसान है सब कुछ!

राखाल भी अपवाद नहीं निकाला - जब कुछ करने का समय आया, हर मर्द की तरह उसे भी अपनी तमाम जिम्मेदारियाँ और मजबूरियाँ याद आ गईं। उसे हर तरह से पा लेने के बाद एक दिन अचानक उसका ध्यान भंग हुआ और याद आया कि वे एक समाज में रहते हैं, उसके सगे-संबंधी, मित्र-परिजन हैं, उसकी एक अदद धर्मपत्नी है जिसके प्रति वह उत्तरदायी है, कल को उसकी बेटी विवाह योग्य होगी... जिसे इतनी सारी बातें याद आ जाय वह प्रेम क्या करेगा! रात के एकांत में जो बातें फुसफुसा कर कही जाती है वे दिन के उजाले की ऊष्मा में पिघल कर शिशिर बिंदुओं की तरह गायब हो जाती हैं। एक समय के बाद चिन्मयी को प्रेम शब्द से वितृष्णा हो गई थी!... ऐसे प्रेम से! यह उस पूरे प्रसंग का सबसे दुखद पहलू रहा - प्रेम से वितृष्ण हो जाना! आगे हर भरम से निकलते हुए उसने यही कोशिश की थी कि अपने प्रेम को निष्काम बना सके। ये उम्मीदें ही तो हर दुख की जड़ में होती हैं!

उमा ब्राह्मणी बैठी-बैठी आग की गठरी बनी चिन्मयी को असहाय भाव से देखती रहती है। सिकुड़ कर मुट्ठी भर रह गई है वह। असहाय, दुर्बल, बिस्तर से मिली हुई। समझ आ रहा है, उसका अंत आ गया है। कितनी ही क्षीण सही, एक छाँव, एक आश्रय थी वह उस अनाथ के लिए। जाने क्यों अब भी आँसू आते हैं इन अभागी आँखों में... वह उलटी हथेली से अपनी आँखें पोंछती है। चिन्मयी बुखार में बड़बड़ाती है - केशव! और कितने दिन...

उसकी पुकार आकाश तक पहुँचती है। सुन कर केशव अपनी बाँसुरी अधर से हटाते हैं और उठ खड़े होते हैं। चिन्मयी देर बाद आँखें खोलती है और देखती है - श्यामल कृष्ण अब गौरांग चैतन्य बन सामने खड़े हैं - अपनी राधिका के रंग-रूप से सज-सँवर कर। एकदम सोने की झलमल प्रतिमा! जीतने उसके नाम उतने विविध रूप! चिन्मयी उसे विस्मित देखती जाती है। भावातिरेक में उसकी आँखों से आँसू अविरल बह रहे हैं। उसके करुणानिधि का हर रूप सलोना! नयनाभिराम! महाप्रभु कभी सुंदर, सलोने निमाई बन नव द्वीप की गलियों में 'हरे कृष्ण' गाते फिर रहे हैं तो कभी अपने विराट विश्व रूप में प्रकट हो कर चिन्मयी को अभिभूत कर रहे हैं। अपढ़, अज्ञानी चिन्मयी! उसे प्रभु की भक्ति योग, अचिंत भेद-अभेद वेदांत जैसी बड़ी, गंभीर बातें समझ नहीं आती। वह बस इतना जानती है कि मीरा की तरह, बाउलों की तरह चैतन्य महाप्रभु

भी उनके बाँके बिहारी के अनन्य दास हैं, बल्कि कंचन वर्ण श्री राधिका के रूप से आलोकित श्री कृष्ण स्वयं हैं। उनकी लीला भी समझ से परे है। भगवत गीता तथा भागवत पुराण पर आधारित भक्ति योग को घट-घट पहुँचाने के लिए गुरु ईश्वर पूरी से दीक्षित हो कर नव द्वीप में योग पीठ की स्थापना की, वर्षों देश-विदेश भटकते रहे, आम जन को 'हरे कृष्ण' का महामंत्र दिया... चिन्मयी भी उसी लीला का अनजाने ही बार-बार हिस्सा हुई है - बाँके बिहारीजी के मंदिर में कई बार भजन गाते हुए भावावेश में मीरा हुई है, 'हरे कृष्ण' की रट लगाते भक्ति रस से आप्लावित चैतन्य महा प्रभु से एकाकार हो कर नाची है, मूर्छित हुई है!

आज भी उस पर मूर्छा-सी छाई हुई है। कुछ सोच-समझ नहीं पा रही। भीतर सब कुछ उलट-पुलट, शिथिल हुआ जा रहा है। बार-बार अपना दुर्बल चित्त अपने गोपाल के पैरों पर एकाग्र करना चाह रही है मगर कर नहीं पा रही। जाने कहाँ-कहाँ भटकता फिर रहा है यह! एक क्षण में यहाँ तो दूसरे ही क्षण सुदूर किसी देश में! ज्वर की तीव्रता में जरा तंद्रा-सी आई नहीं कि माँ सरहाने आ बैठती है - चीनू! उठ माँ! ये बार्लि पी ले... तेरा बुखार तो उतर ही नहीं रहा! सर पर पानी में भिगो कर ठंडी पट्टी रख रही है माँ, उसके लिए पथ्य बना रही है, बुखार उतारने के लिए पानी से सर धो रही है। माँ को देख कर अस्सी साल की चिन्मयी फिर से दस साल की बच्ची बन गई है। मान से भर कर फफक-फफक कर रो रही है - तुम बार-बार मुझे छोड़ कर कहाँ चली जाती हो माँ? मुझे सब बहुत सताते हैं - दादा बौदी की बात में आ कर मुझे मारते हैं, बौदी मुझे खाना नहीं देती, रात-दिन जली-कटी सुनाती है, गाँव की औरतें मुझे भातार खाकी कह कर बुलाती हैं... माँ सुन कर चुपचाप अपने आँसू पोंछती है - मैं सबको डाँट दूँगी! "हाँ" चिन्मयी माँ के तेल, मसाले से महकते आँचल में मुँह छिपा कर और जोर से सुबकती है - "अच्छे से डाँट देना सबको!"

लो! दो पलक निश्चिंत हो कर आँख बंद किया और माँ फिर अदृश्य! वह दिशाहारा हो कर माँ को ढूँढ़ती फिरती है - दुर्गा मंडप, काली बाड़ी, आम बागान... आम बागान में राखाल मिलता है, उसे खींच कर किसी एकांत कोने में ले जाना चाहता है। उसके पास खूब सारी मीठी-मीठी बातें हैं, दो उद्दंड हाथ हैं, लोभ से भरी कामातुर आँखें हैं... मगर वह उसका हाथ छुड़ा कर भाग खड़ी होती है - छी! पुरुष मानुष का प्रेम... पुरुष के प्रेम से छूट कर वह कहाँ जाएगी! दौड़ते-दौड़ते वह थक कर चूर हो जाती है। खड़ी-खड़ी हाँफती है, हर तरफ देखती है - यहाँ तो सब पुरुष ही हैं - मंदिर का पुरोहित, आश्रम का ट्रस्टी, बड़े-बड़े दानी सेठ, चौकीदार, रसोइया... साथ में औरतें - पान-कत्थे से रँगे होंठ, मुँड़े हुए सर, सफेद धोती, गले में रुद्राक्ष की माला... सब हाथ उठा-उठा कर

कीर्तन गा रहे हैं, झूमते हुए भावावेश में इधर-उधर गिर रहे हैं। उन सब से बचते हुए वह गोविंद देवजी की भव्य मूर्ति के पास किसी तरह पहुँचती है और उनके पैरों पर गिर पड़ती है। सब एक साथ चिल्लाते हैं - अरे! फिर से मूर्छित हो गई!

डॉक्टर के कंधे के पीछे से उमा ब्राह्मणी उचक कर चिन्मयी को देखती है और फिर पानी लेने दौड़ जाती है। आज तीन दिन से चिन्मयी इसी तरह ज्वर में बेसुध पड़ी है। लगातार बड़बड़ा रही है। कभी अपनी लाल आँखें खोलती है, इधर-उधर कुछ खोजती हुई-सी देखती है और फिर कभी अपनी माँ को, कभी कान्हा को पुकारते हुए अचेत-सी हो जाती है। वह मातृ शक्ति एनजीओ की नीता बहनजी से बोल कर कई बार डॉक्टर बुला लाई है। डॉक्टर ने देख कर बोला है, जीएगी नहीं! वह जीएगी नहीं यह बात तो सभी जानते हैं, मगर जाने क्यों फिर भी सुन कर कइयों की आँखें भीगी थीं। जब भी कोई गुमनाम विधवा इस तरह से मरती है, सबको अपना अंत दिखने लगता है। जीवन तो जानवरों की तरह एक झुंड में किसी तरह बीत जाता है, मगर मृत्यु का सफर बहुत एकांगी होता है इस वृंदावन में - ना कोई आँसू बहाने वाला आत्मीय-स्वजन, ना चार कंधे देने वाले बंधु-बांधव! चिता की आग भी अक्सर नसीब नहीं होती इन अनाथ विधवाओं को। चिन्मयी को इस बात का बहुत डर था। एक हिंदू हो कर अंत में देह को आग और गंगा न मिले तो फिर आत्मा को मुक्ति कैसे मिलेगी! पिछली बार वह श्यामा दासी की दुर्गति देख चुकी है। नाली के किनारे रखी बोरी में बँधी उसकी लाश को ले कर आवारा कुत्ते आपस में छीना-झपटी कर रहे थे। वह मरने के दिन तक अपने घर वालों के पत्र का इंतजार करती रही थी कि कोई तो जवाब दे, आ कर उसे यहाँ से ले जाय! राह चलते डाकिया को रोकती थी, इससे-उससे पूछती थी। सब झिड़क देते थे। किसी तीर्थ यात्री से उसने अपने घर वालों को पत्र लिखने के लिए कहा था कभी। जाने उसने लिखा भी कि नहीं मगर श्यामा दासी उसी की बात पर भरोषा करके अंत तक बैठी रही। बोलती थी, बहुत दिन पोते का मुँह नहीं देखा, मेरा सारा संसार पड़ा है... इस तरह से यहाँ पड़े रहने से चलेगा क्या! उसका संसार जाने कहाँ पड़ा रहा और वह एक दिन इस तरह से उठ कर चल दी...

हर एक की मौत पर यहाँ सब एक बार मरते हैं, अपना-अपना अंत अपनी आँखों से देखते हैं। रोती हुई उमा ब्राह्मणी को उस बार चिन्मयी ने ही चुप कराया था। कहा था, विश्वास रखो। जाने किस विश्वास की बात करती थी वो। जीवन भर छोटी-छोटी खुशियों के लिए तरसती रही, ठगी गई, प्रताड़ित हुई मगर अपनी आस्था को अपनी बंद मुट्ठियों से कभी फिसलने नहीं दिया। पूछने पर कहती - यह आशा, थोड़ा-सा विश्वास - यही तो आखिरी संबल है उमा! अब इसे जो कह लो। जीने के लिए दूसरों को

ही नहीं, खुद को भी ठगना पड़ता है कभी-कभी! शायद ठीक ही कहती थी वो। उमा ब्राह्मणी के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी तो यही रही कि वह खुद को दूसरों की तरह ठग नहीं पाई। उसे कभी अपने भगवान का आसरा नहीं था, परलोक का भरोसा नहीं था, इसलिए वह हमेशा अनाथ और निराश्रित रही... भीतर तक असुरक्षित। स्वामीजी प्रवचन देते है - इच्छा से मुक्त करो खुद को। यही तो हर दुख के मूल में है! किस इच्छा से मुक्ति की बात करते हैं स्वामीजी! एक छोटा-सा घर, परिवार, बच्चे, किंचित प्यार-दुलार, साज-शृंगार, सुख... क्या यह सब बहुत ज्यादा है चाहने के लिए! अगर इन छोटी-छोटी इच्छाओं से भी मनुष्य मुक्त हो जाय तो वह मनुष्य कैसा! कुछ अच्छा खा नहीं सकते, मन का ओढ़-पहन नहीं सकते! हर जगह अवांछित! उपेक्षित! जीवन भर मनहूस, अपशकुनी के नाम से पुकारी गई। सुबह-सुबह किसी ने चेहरा देखना तक पाप समझा। किसी शुभ कार्य में हिस्सा नहीं ले सकी। जिसने जैसे चाहा भोगा, लेकिन अपनी इच्छा से अपनी देह को एक दिन जी ना सकी...

अब कुछ सहृदय लोग, एनजीओ आगे आ रहे हैं, उनके लिए कुछ करने की कोशिश कर रहे हैं। विदेशी औरतें, मर्द हाथ में किताब, कैमरा ले कर घूमते हैं, उनसे तरह-तरह के सवाल पूछते हैं। हाल ही में एक सेठ ने अपनी बेटी के विवाह में सैकड़ों विधवाओं को आमंत्रित किया था। कुछ विधवाएँ कोलकाता जा कर दुर्गा पूजा भी देख आई। कुछ लोग चाहते हैं वे रंगीन कपड़े पहने, उत्सव में सम्मिलित हों, त्योहार मनाए। कहते हैं, गलत परंपराएँ इसी तरह खत्म होंगी। इसकी शुरुआत हो चुकी है। "ये शुरुआत बड़ी देर से हुई बहन..." सब देख-सुन कर चिन्मयी गहरी उच्छवास के बीच बोलती - "मेरा जीवन तो एक ही था! बीत गया..." किस शिद्दत से जीना चाहती थी वह! गहरी ललक थी उसके मन में जीवन के प्रति! रंग, सुगंध, स्वाद के प्रति! पोखर-ताल का काजलवर्णी जल, उनमें खिले कुमुद-कमल की गुलाबी आभा, बारिश के अंत में खेतों में मुस्कराते कास का मीलों फैला उजला वैभव, उन पर चहचहाता वन पाखियों का हरा झुंड, रांगा माटी का रक्तिम लावण्य... सब कुछ उसे उल्लास से भर देता था। जिस वैधव्य में उम्र गुजरी वह कभी मन की अवस्था तो नहीं बन सका। बस ढोया असहाय हो कर, झेला हर क्षण! अब भी बोझा उतरा नहीं देह-प्राण से!

उमा ब्राह्मणी का मन आज बहुत उदास है। कल वृंदावन की होली है। देर शाम तक मंदिर में भजन-कीर्तन हुआ है। गा-गा कर उसका गला बैठ गया है। मंदिर से लौट कर देखा तो चिन्मयी उसी तरह बेसुध पड़ी थी। बिना कुछ खाए-पिए वह भी अपनी चटाई बिछा कर उसके बगल में लेट गई थी। बीच रात उसने नींद में देखा था, तीन जवान विधवाओं को आश्रम का चौकीदार चुपके से बुला ले गया था। उनमें एक अट्ठारह

साल की विधवा मालविका भी थी जो हाल ही में आश्रम में आई थी। वह उसी के गाँव की थी। इस वजह से थोड़े ही दिनों में उससे एक आत्मीयता-सी हो गई थी उसकी। इस वक्त उसे रोते-छटपटाते देख उसने कस कर अपनी आँखें बंद कर ली थी - काश! इच्छा मृत्यु जैसी कोई चीज होती...

बगल में अपनी मृत्यु शैय्या पर लेटी गहरी-गहरी साँस लेती चिन्मयी की बंद पलकों में आज कवि गुरु रवींद्रनाथ की एक बहुत पुरानी कविता जीवित हो उठी है, अपने आराध्य के इर्द-गिर्द लोटती फिर रही है -

आमार प्राणेर मानुष आछे प्राणे,

आछे से नयन ताराय, आलोक-आधारे,

ओगो ताय देखी ताके जेथाय-सेथाय,

ताकाय आमी जेदिक पाने...

(मेरे मन का मीत मेरे मन में है, है वो मेरी आँखों के ताराओं में, अँधेरे-उजाले में, उसे देखती हूँ मैं जिधर देखूँ**...)**

कविता सुन होली खेलते हुए राधा और गोपियों से घिरे कृष्ण हाथ में चुटकी भर गुलाल ले कर चिन्मयी को मुड़ कर देखते हैं और मुस्कराते है...

सुबह तेज शोर-गुल के बीच उमा ब्राह्मणी की आँख खुली थी। आज होली थी। पूरा वृंदावन होली के रंग में डूबा हुआ था। सबके साथ युगों से वैधव्य के सफेद आवरण में लिपटी विधवाएँ भी रंगों में सराबोर थी। बहुत से लोगों के अथक प्रयास और संघर्ष के बाद सैकड़ों वर्ष पुरानी निर्मम परंपरा टूटी थी। इस साल विधवाओं को भी वृंदावन में होली खेलने की अनुमति दी गई थी। उमा ब्राह्मणी फटी-फटी आँखों से अपने चारों तरफ सबको देखती है - इतना रंग! इतनी उमंग! कल तक की सूनी आँखें, उदास चेहरे अब कहीं नहीं हैं। वृंदावन की गलियों में अभिशप्त रूह-सी फिरती सफेद साड़ियाँ, फैले हुए हाथ, बुझी हुई आँखें भी कहीं नहीं। इतनी हँसी! उल्लास!। क्या ये वही वृंदावन है! वह बार-बार अपनी आँखें विस्मय से खोलती बंद करती है - हे ठाकुर! यह सब सच है क्या!

इसी भीड़ में एक भ्रमित-सा नवयुवक हाथ में एक चिट्ठी लिए सबसे श्यामा दासी के बारे में पूछता फिर रहा था। उमा के पूछने पर उसने बताया था, वह श्यामा दासी का

पोता है, उसे अपने साथ अपने घर ले जाने आया है। उसे उनकी चिट्ठी बहुत देर से मिली थी। जाने कहाँ-कहाँ से घूमते हुए उन तक पहुँची थी! सुन कर उमा ब्राह्मणी रोई थी - वह तो इंतजार कर-कर के चली गई बेटा! हो सके तो मुझे अपने साथ ले चल... इसके बाद वह देर तक बैठ कर रोई थी। जाने किस दुख में या खुशी में! जो न्याय समय पर ना हुआ वह न्याय कैसा...

एक समय बाद जाने कहाँ से आ कर मालविका उसे एक कोने में खींच ले गई थी। उस समय वह बहुत घबराई हुई दिख रही थी। हाँफते हुए बोली थी - दीदीमा! मैंने बडे पुरोहित की जान ले ली! और सहा नहीं जा रहा था यह सब! उसकी बात सुन कर उमा ब्राह्मणी सकते में आ गई थी। देर तक कुछ बोल नहीं पाई थी। अपनी बात खत्म कर बदहवास मालविका फिर से दौड़ती हुई भीड़ में खो गई थी। उसके पीछे वह मूर्तिवत खड़ी रह गई थी - तो क्या आखिर वह समय आ गया! पाप का घड़ा भर गया! तुम आ रहे हो भगवान?

मुक्तो बामनी जाने कब से उसे खोजती फिर रही थी। देखते ही उसका हाथ पकड़ कर उसे आश्रम के बाहर गेट के पास एक कोने में रखे एक शव के पास ले गई थी - तू इधर है! कब से तुझे ढूँढ़ रही थी! देख, चिन्मयी दीदी... उमा ब्राह्मणी ने देखा था, जीवन भर वैधव्य के सफेद, उदास रंग में लिपटी बाल विधवा चिन्मयी आज रंगों में डूबी हुई शांत पड़ी थी। उसके चारों ओर गुलाल के सतरंगी बादल उड़ रहे थे। उसके कान्हा ने आज दोनों हाथों से सुख, सौभाग्य, सुहाग के सारे रंग अपनी जनम दुखी मीरा पर उड़ेल दिए थे। उसका युगों से मलिन पड़ा आँचल सात रंगों का इंद्रधनुष बन दिक-दिगंत में लहरा उठा है। रंग, रंग और बस रंग...

देखते हुए उमा ब्राह्मणी की आँखें एक बार फिर आँसुओं से भर गई थीं। उसे रोते देख अपने कृष्ण के साथ होली खेलती हुई सोलह साल की अल्हड़ चिन्मयी एक पल के लिए ठिठक कर उसे इशारे से रोने से बरजा था - आज वह सदियों की प्रतीक्षा के बाद मीरा के वैधव्य से मुक्त हो कर अपने कृष्ण की रुक्मिणी हुई है, श्याम की राधा हुई है। आज सुहाग रंग का दिन है! वृंदावन की शाप-मुक्ति का दिन है! युगों बाद ब्रज की पहली होली है! आज रोना नहीं...

https://www.hindiadda.com/mohe-rang-do-laal/